P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मोहन राकेश के नाटकों में अस्तित्ववादी चिन्तन

सुमंगल सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
एस0जी0आर0आर0 (पी0जी0) कॉलेज,
देहरादून

सारांश

भारतवर्ष में स्वतंत्रता के पश्चात् एक बहुत बड़ा बदलाव आया, जिसमें मनुष्य ने अपने को टूटा हुआ पाया। बड़े–बड़े भवनों, संस्थानों, कारखानों, मशीनों का निर्माण हुआ, योजनायें बनी, आयोग बनें किन्तु इस निर्माण की सतह पर आदमी का जो स्वरूप नजर आया, वह बहुत ही विकृत था, जिसमें लोग पहले से भी बदतर और पतित नजर आने लगे। इस वातावरण में भारत में उसी अस्तित्ववादी चिन्तन धारा ने जन्म लिया जो पश्चिम में विश्व युद्धों की विभीषिका से उत्पन्न हुई थी। भारत में भी व्यक्ति का अपने अस्तित्व के सामने सुरक्षा के लिये अपनी निजता को प्राप्त करने की व्याकुलता छटपटाने लगी। मोहन राकेश के नाटकों में यह चिन्तन दृष्टिगत होता है, जहां राकेश के पात्र अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करते रहते हैं। राकेश के प्रमुख नाटक आसाढ़ का एक दिन, लहरों का राजहंस, आधे–अधूरे, और पैर तले की जमीन अस्तित्ववादी चिन्तन की अवधारणा को रेंखांकित करते हैं।

मुख्य शब्द : अस्तित्ववाद, मोहन राकेश, नाटक, चिन्तन, पाश्चात्य।

प्रस्तावना

मानव अस्तित्व क्या है? किस प्रकार का है? किस सीमा तक का है? ईश्वर है या नहीं? आस्ति–नास्ति के द्वन्द्व से ही अस्तित्ववादी विचारधारा का जन्म हुआ, किसी ने ईश्वर को नकारा, किसी ने स्वीकारा, यही से अस्तित्व का इतिहास आरम्भ हुआ। यूँ तो संसार में प्रत्येक जीव–जन्तु, वनस्पति का अपना अस्तित्व है, किन्तु विवेच्य अस्तित्ववाद का सम्बन्ध आम व्यक्ति के अस्तित्व से है। व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता तथा विचारधारा को सुरक्षित रखना चाहता है। इस चाहत के परिणाम स्वरूप ही अस्तित्ववादी विचारधारा का जन्म हुआ।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में मोहन राकेश के नाटकों का मूल्यांकन करते हुए उन्हें अस्तित्ववादी चिन्तक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। चिन्तन का यह स्वरूप पाश्चात्य चिन्तन से आयातित नहीं है वरन् भारतीय पृष्ठभूमि पर अपने वर्तमान में भोगी गयी त्रासदी से उत्पन्न है जो मोहन राकेश को पाश्चात्य चिन्तकों से जोड़ने वाला और बहुत करीब है।

साहित्य अवलोकन

''मैं तुम्हारा किसी का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता।''– 'लहरों का राजहंस' – मोहन राकेश, 2005 (राजकमल प्रकाशन) – विवेच्य नाटक में पात्र नंद का यह कथन अस्तित्ववादी सोच को परिभाषित करता है। ''मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और मैं नाम नहीं केवल विशेषण हूँ''– 'आसाढ़ का एक दिन' – मोहन राकेश, 2005 (राजपाल प्रकाशन)। मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' प्रमुख पात्र कालिदास में उपरोक्त कथन अस्तित्ववादी चिन्तन को ही रेखांकित करती है।

''मेरी कामना मेरे अन्तर की है मेरे अन्तर में ही उसकी पूर्ति हो सकती है बाहर का आयोजन मेरे लिये इतना महत्व नहीं रखता जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।''– 'आधे–अधूरे' – मोहन राकेश, 2009 (राधाकृष्ण प्रकाशन)। उपरोक्त पंक्तियां मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आधे–अधूरे' की है जो कि स्त्री–पुरूष संघर्षों का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मोहन राकेश के नाटकों में आधुनिक बोध – डा0 सी विश्वनाथन, 2017 (अमन प्रकाशन कानपुर)। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने आधुनिक भावबोध के अन्दर अस्तित्ववादी चिन्तन को ही विशेष रूप से प्रकट किया है।

विषय विस्तार

अस्तित्ववाद एक मानव केन्द्रित विचारधारा है जिसका आरम्भ पश्चिम में हुआ। यूं तो भारतीय दर्शन में भी आत्मा–परमात्मा पर चिन्तन कर शरीर की नश्वरता को स्वीकारा गया है। यह चिन्तन मानव अस्तित्व से ही सम्बन्ध है, किन्तु पश्चिम में अस्तित्ववादी विचारधारा के जन्म का मुख्य कारण महायुद्धों की

विभीषिका से उत्पन्न नपुंसकता और निस्सारता थी। वैज्ञानिक शस्त्रों के सहांरक अम्बार ने मनुष्य को बौना बना दिया। अपने ही हाथों से निर्मित पुर्जों के आगे मनुष्य असहाय हो गया। नीत्शे ने ईश्वर के मृत्यु की घोषणा की। वस्तुतः ईश्वर की मृत्यु का आशय परम्परागत नैतिक मूल्य और सड़ी गली मान्यताओं से था जो समाज के लिये थोथी और जर्जर हो चुकी थी। सोरेन कीर्केगार्द से लेकर अल्वेयर कामू तक ने अपने चिन्तन को अस्तित्ववाद की वैचारिक भूमि पर प्रस्तुत किया।

सोरेन कीर्केगार्द को अस्तित्ववादी विचारधारा का जनक माना गया है, तत्पश्चात् जर्मनी, फ्रांस, और रूस के अनेक चिन्तकों ने इस विचारधारा की पुष्टि की, इन्होंने माना कि भय, कष्ट, पीड़ा, अपराध भावना, संघर्ष, असन्तोष और मृत आदि बिन्दुओं का चरम विस्तार सार्वभौमिक है और इसका प्रभाव घातक है। मानव इससे पलायन नहीं कर सकता। महायुद्धों की विभीषिकाओं से उत्पन्न पीड़ा और असहाय अवस्था ने इस विचारधारा को जन्म दिया। युद्धों में संलग्न रहने वाले देशों के साथ–साथ दूसरे देशों के भी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल्यों में बदलाव आया।

आस्था, अविश्वास और मूल्य संक्रान्ति ने व्यक्ति को एकाकीपन, अजनबी पर और कुण्ठाओं की पीड़ा में अकेला छोड़ दिया। द्वितीय महायुद्ध ने एक बार फिर जीवन की निस्सारता और थोथेपन का अहसास कराया। वैज्ञानिक विकास के नाम पर संहारक शस्त्रों के अम्बार के आगे मनुष्य बौना हो गया, जिससे उसकी सुरक्षा को ही नहीं मानवीयता को भी खतरे में डाल दिया, जिसके कारण उसकी रही सही मान्यतायें भी हिल गयी। टूटन और अस्थिरता के मध्य जो शेष रहा वह अव्यवस्था का एहसास था, जिसके बीच व्यक्ति घिर गया। यहीं से मानव अस्तित्व के आगे एक प्रश्नचिन्ह लग गया। इसी निराशा में कीर्केगार्द एक शती के बाद मसीहा नजर आने लगा। साहित्य या दर्शन कोई उसके प्रभाव से नहीं बचा।इसी परिवेश को भोगते हुये नीत्शे और दांस्तोवस्की ने उसे आधुनिक भाव–बोध से जोड़ा, जो आगे चलकर यास्पर्स, हेडेगर, मार्शल, अलवेयर, कामू, काफ्का, सार्त्र और वर्दिएफ के दर्शन का प्रस्थान बिन्दु बना। यही चिन्तन अस्तित्ववाद कहलाया।

अस्तित्ववाद के प्रभाव से विसंगत वादी नाटकों का जन्म हुआ, यद्यपि विसंगत नाटकों की जड़ें उन्नीसवीं सदी के नाटकों में ही पड़ गई थी, किन्तु 1950 के आस–पास से यह विसंगत नाट्यधारा अपनी तीव्रगति से प्रवाहमय हुयी।

पश्चिम में विसंगत नाट्य लेखन के वैचारिक संकट का द्योतक माना गया, क्योंकि उन्होंने यह अनुभूत किया कि मनुष्य की सहायता न तो विज्ञान कर सकता है और न ही परंपरा से चले आ रहे सड़े–गले जीवन मूल्य। उन्होंने शाश्वत् सुनिश्चित नैतिकता को भी नकार दिया और माना कि कुछ भी पूर्व निर्धारित नहीं है, मनुष्य का स्वयं अपने होने को परिभाषित करना है, जिस जगत में वह है वह प्रयोजनहीन है, जिसमें वह असहाय और अकेला है। इसी पीड़ा से मनुष्य की निर्थकता और नास्तिभाव को सिद्ध करता है। विसंगति नाटक का यही दर्शन है। सन् 1945–1965 के काल खण्ड में लिखे गये नाटकों ने परम्परागत मूल्यों का विरोध करते हुये जीवन को विसंगति का पर्याय माना और अस्तित्व की विरूपता को स्वीकार किया।

भारत में फ्रांस, जर्मनी, रूस जैसी परिस्थितियां तो उत्पन्न नहीं हुयी किन्तु इस काल खण्ड के साहित्य में इस चिन्तन का भी कुछ निर्णायक रहा। वही भारत में भी हिन्दी कविता कहानी ने इस विसंगतवादी भूमि पर अपने चिन्तन को रोपा, जबकि नाट्य विधा सामाजिक यथार्थ से जूझती रही। यह निश्चित है कि जब दो धारायें मिलती हैं या एक दूसरे से सम्पर्क में आती हैं तो नये रंग उभरतें है। जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण लाल, जगदीश चन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती और मोहन राकेश ने हिन्दी नाट्य धारा के विश्व की विराट चेतना में समन्वित कर नवीन कलेवर प्रदान किया। साहित्य पूर्व का हो या पश्चिम का उसका जुड़ाव मुख्य रूप से मनुष्य से होता है। भारत में यह चिन्तन कतिपय बदलाव के साथ कभी विसंगतवाद कभी नवस्वच्छन्दवाद, तो कभी व्यक्तिवाद के रूप में जाना गया। इसे कभी दादावाद तो कभी विसंगतवाद कहा गया, किन्तु ने एक ऊँची छलांग के साथ नाट्य साहित्य को पाश्चात्य से जोड़ दिया।

मोहन राकेश के मूल चिन्तन का आधार पाश्चात्य जगत में व्याप्त निराशा नहीं वरन् स्वतंत्रता के पश्चात् देश में व्याप्त मुद्रास्फीति, महंगाई, भ्रष्टाचार, कालाधन, लूट खसोट और बेरोजगारी के नारों ने एक ऐसी स्थिति खड़ी कर दी, जहां व्यक्ति के अस्तित्व के आगे प्रश्न चिन्ह लग गया। कई प्रश्न उभर कर सामने आये। भारतीय चिन्तकों ने स्वीकार किया, निर्माण हुआ बड़े–बड़े भवनों का, सरकारी और अर्द्धसरकारी संस्थाओं, समीतियों और आयोगों का, कारखानों और मशीनों का, बाँध और विकास योजनोओं का और शासकीय शब्दकोशों का। इस निर्माण की सतह से नीचे इंसान का जो रूप सामने आया वह बहुत ही विकृत था, लगा कि आसपास के बड़े–बड़े परिवर्तनों के साये में लोग निरन्तर पहले से छोटे और कमीने होते जा रहे हैं।

जिन्दगी का सारा अन्दरूनी ढाँचा, भुरभरी मिट्टी की तरह झड़ता–ढहता जा रहा है। स्पष्ट है कि विश्वयुद्धों के परिणामस्वरूप जो नपुंसकता और निस्सारता पश्चिम को मिली वही मानसिक टूटन भारत को स्वतंत्रता के बाद मिली। ऐसी स्थिति में अस्तित्ववादी विचारधारा उर्वर सिद्ध हुयी न केवल कविता और कथा साहित्य इससे प्रभावित हुआ वरन् नाट्य साहित्य भी इससे अछूता न रहा।

मोहन राकेश के चर्चित नाटक आसाढ़ का एक दिन, लहरों का राजहंस, आधे–अधूरे व पैर तले की जमीन अस्तित्ववादी चिंतन का दृष्टांकन करने वाले नाटक है। चाहे आसाढ़ का एक दिन का कालिदास हो, या लहरों का राजहंस का नंद हो या आधे–अधूरे का महेन्द्रनाथ। ये सभी पात्र अपने–अपने अस्तित्व की तलाश में भटक रहे हैं। नंद का सिर मुंडवाकर बौद्ध धर्म स्वीकार करना, कालिदास का राजसी ठाट–बाट छोड़कर मल्लिका के पास लौटना ये सभी उदाहरण मोहन राकेश के अस्तित्ववादी सोच को ही प्रकट करते हैं।

पश्चिम में विकसित हुई अस्तित्ववादी चिन्तनधारा के पीछे जो भी कारण रहे हों किन्तु भारतीय परिवेश में उसका व्यापक प्रभाव देखा गया। वैसे तो हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में अनेकानेक रूपों में यह चिन्तन देखने को मिलता है, लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी नाटककारों ने विशेष रूप से इस चिन्तन पर मनन किया, चाहे उसके कारण जो भी हो। विशेषकर मोहन राकेश और उनके नाटक अस्तित्ववादी चिन्तन के जीते जागते उदाहरण हैं।

मोहन राकेश के नाटकों में स्वातंत्र्य भावना, वैयक्तिता, सामाजिकता, आस्था – अनास्था, पीड़ा की स्वीकृति को व्याख्यायित किया गया है, जो कि अस्तित्ववादी चिन्तन की प्रमुख विशेषतायें हैं। स्वतंत्रता का अर्थ यहां पर उच्छंखृलता नहीं है अपितु दायित्व से जुड़ी आंतरिकता है। वैयक्तिता अस्तित्ववाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। राकेश के नाटकों का अध्ययन करने के उपरान्त ज्ञात होता है कि स्थापित मान्यताओं और सामाजिक रीति – रिवाजों के कारण व्यक्ति दूसरों के समक्ष अपने को अकेले ही पाता है।

आस्था – अनास्था का स्वर अस्तित्ववादी चिन्तन में उभरता रहा है। राकेश के नाटकों का अध्ययन करने के पश्चात् हमें ईश्वर, धर्म, अध्यात्म में अनास्था के स्वर दिखाई पड़तें हैं। राकेश के सभी नाटकों में नाटक के पात्र अस्तित्ववाद की पीड़ा से ग्रस्त हैं और अस्तित्व की सुरक्षा के लिये संघर्ष कर रहे हैं।

निष्कर्ष

मोहन राकेश के नाटकों का अध्ययन करते हुए यह ज्ञात होता है कि मोहन राकेश भारतीय अस्तित्ववादी चिन्तकों की अपेक्षा पाश्चात्य चिन्तकों के अधिक करीब है। यद्यपि मोहन राकेश की दो कृतियों पैर तले की जमीन और लहरों के राजहंस को जयदेव तनेजा और गोविन्द चातक द्वारा अस्तित्ववादी निर्धारित किया गया है, किन्तु मेरी दृष्टि से उनकी सम्पूर्ण नाटक ही अस्तित्ववाद से आच्छादित है क्योंकि उनके नाटकों के सभी पात्र आधुनिक मानव की उस व्यग्रता और टूटन को व्यक्त करते है जिसे जीने के लिये व्यक्ति अभिशप्त है। पाश्चात्य चिन्तकों के बहुत करीब होने के बावजूद राकेश के चिन्तन भारतीयता को ओढ़े हुए है, यही राकेश की मौलिकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राकेश मोहन–आषाढ़ का एक दिन (राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005)*
2. *राकेश मोहन–लहरों का राजहंस (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005)*
3. *राकेश मोहन–आधे–अधूरे (राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009)*
4. *राकेश मोहन – पैर तले की जमीन (राजपाल एण्ड सन्स, 1994)*
5. *सिंह डा0 शिवप्रसाद–आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद (नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली)*
6. *शर्मा डा0 रामविलास–नई किताब और अस्तित्ववाद (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली)*
7. *चातक गोविन्द–आधुनिक नाटकों का मसीहा (इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली)*
8. *मोहन राकेश के साहित्य का समग्र मूल्यांकन (शरेशचन्द्र) 2016 – (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
9. *रंगमंच के नाटककार मोहन राकेश (2016) – पो0 नारायण राजू – अमन प्रकाशन, कानपुर।*
10. *मोहन राकेश के नाटक –अमन प्रकाशन, कानपुर, क्षीरसागर (2016)*
11. *मोहन राकेश के रचनाओं में आधुनिक भावबोध (2017) डा0 सी0 विश्वनाथन –अमन प्रकाशन, कानपुर।*
12. *मोहन राकेश और उनका साहित्य – डा0 नीलम फारूखी (2017), विकास प्रकाशन, कानपुर।*
13. *हिन्दी नाट्य विमर्श– डा0 सदानन्द भोसले (2017) विकास प्रकाशन, कानपुर।*